लोक जीवन में भ्रष्टाचार : एक समाजशास्त्रीय दृष्टि

*डॉ. श्रीनिवास मिश्र** अनुज चतुर्वेदी

समाज सामाजिक संबंधों का जाल है । सामाजिक संबंध देष, काल एवं परिस्थितियों की उपज होते हैं । संबंध मानव व्यवहारों को निर्देषित करते हैं, जिसके कारण समाज में आचार–विचार, व्यवहार के तरीके, सामाजिक संहिताओं का जन्म होता है । मानव व्यवहार उसमें भाग लेने वाले सदस्यों के अंतः संबंधों या अंतः क्रियाओं का एक विशेष भौतिक या पर्यावरणीय पहलू से निर्धारित होता है । व्यवहारों के विभिन्न निर्माणक भाग (Constituent Part) एक सांस्कृतिक व्यवस्था के अंतर्गत एक दूसरे से प्रकार्यात्मक संबंध के आधार पर सम्बद्ध समग्रता की एक संतुलित स्थिति मो बनाये रखते हैं । जिसके फलस्वरूप अपने स्वीकृत अथवा उपलक्षित (Implied) उद्देष्यों के अनुसार विभिन्न संस्थाओं और सामाजिक अंतः क्रियाओं की क्रियाशीलता निर्धारित व नियमित होती है, जिससे सामाजिक व्यवस्था का जन्म होता है ।

मानव की अंतःक्रियाओं को उद्देश्य या लक्ष्य या 'इच्छाओं की आदर्श प्राप्ति' एक सामाजिक परिस्थिति और सांस्कृतिक व्यवस्था में अंतर्निहित है । मनुष्य का उद्देश्य या लक्ष्य व्यवहार अभिप्रेरणाओं को जन्म देता है । व्यवहार अभिप्रेरणाएं समाज में पाये जाने वाले आचार–विचार के दृष्टिकोण से संचालित होते हैं, मानव के वे व्यवहार जो सामाजिक स्वीकृति प्राप्त आचार–संहिताओं के अंतर्गत होते हैं, शिष्टाचार की श्रेणी में आते हैं। इसके प्रतिकूल मानव के ऐसे व्यवहार जो सामाजिक आचार–संहिताओं के विरुद्ध होते हैं । भ्रष्टाचार कहे जाते हैं ।

भ्रष्टाचार एक विसंगति व विचलित व्यवहार :–सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री मर्टन के अनुसार सामाजिक तथा सांस्कृतिक संरचनाओं में दो तत्व विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं – प्रथम सांस्कृतिक लक्ष्य (Cultural Goals) और द्वितीय संस्थागत आदर्ष नियम (Institutional) सांस्कृतिक लक्ष्य सामान्य मानवीय भावनाओं तथा प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, और इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सबको प्रयत्नशील रहने का निर्देश देते हैं। प्रत्येक सामाजिक संरचना में सांस्कृतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के कुछ निश्चित मान्य और स्थापित प्रणालियां हैं, जिन्हें संस्था कहते हैं। व्यक्ति जब सामाजिक संरचना के इन दो पहलुओं के अन्तर्गत संस्कृति द्वारा निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति में उचित और स्वीकृति साधन प्रणालियों की उपेक्षा कर समाज के आदर्श नियमों का उल्लंघन करना ही जीवन का आदर्श समझता है और उसके माध्यम से अपनी स्वार्थ पूर्ति करता है । यही उसके आचरण की विसंगति या नियमहीनता है, जो भ्रष्टाचार को जन्म देता है। व्यक्ति द्वारा समाज की स्थापित संस्थागत प्रत्याशाओं के प्रतिकूल किया गया व्यवहार ही विचलित व्यवहार कहा जाता है। इस प्रकार भ्रष्टाचार एक विसंगति व विचलित व्यवहार है।

भ्रष्टाचार के कारण:–मानव जीवन में इच्छाओं और प्रेरणायें नैसर्गिक व स्वाभाकि हैं। इच्छाओं के दो स्वरूप हैं– प्रथम सीमित इच्छा, जिसके अन्तर्गत जीवन की बुनियादी आवश्यकतायें जैसे–भोजन, वस्त्र, आवास आदि। दूसरा स्वरुप असीमित इच्छा का है। जिसमें धन, यश, कीर्ति, वैभव का सुख आदि । सीमित इच्छाओं की पूर्ति हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक प्रतिमानों के अधीनस्थ साधनों से की जाकर व्यक्ति की सुख व संतुष्टि प्रदान करते हैं, परन्तु असीमित इच्छा की संतुष्टि उपलब्ध साधन मूल्यों से सभी के लिये संभव नहीं होती । बढती जनसंख्या, वैज्ञानिक क्रांति, प्रौद्योगिकी उत्पादों ने मनुष्य की भौतिकवादी व अधिक स्वार्थी बना दिया है । उपभोक्तावादी संस्कृति में मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं में वृद्धि कर उसे विलासितापूर्ण जीवन और स्वार्थों की अधिकतम पूर्ति के लिए प्रेरित किया । सम्पूर्ण जीवन पद्धति में बदलाव, समाज मे मान, सम्मान और प्रतिष्ठा के सूचकों में धन का स्थान व महत्व सर्वाधिक हो गया। धन कमाने की चाहत में उचित और अनुचित साधनों पर विचार करना बंद कर भ्रष्टाचार को बढावा दिया। भ्रष्टाचार के बढने का प्रमुख कारण है मानवीय मूल्यों का पतन।

लोक जीवन में भ्रष्टाचार :– भ्रष्टाचार निरोधक समिति (1964) में अपने प्रतिवेदन में लिखा है कि "शब्द के व्यापक अर्थ में एक सार्वजनिक पद अथवा जनजीवन में उपलब्ध एक विशेष स्थिति के साथ संलग्न शक्ति तथा प्रभाव का अनुचित या स्वार्थपूर्ण प्रयोग ही भ्रष्टाचार है ।'' ''आज हमारे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, नैतिक, शैक्षणिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में भ्रष्टाचार की जडे गहराई से जमी हुई हैं । राजनेता, प्रशासक, उद्योगपति, व्यापारी, कर्मचारी सभी इसमें लिप्त हैं । वर्तमान प्रतिस्पर्धी दौर में सभी अवसर की तलाश में हैं । अवसर मिलते ही सहयोग, सेवा, कर्तव्य और नियम–कानून के प्रति निष्ठा की भावना को तिलांजलि देकर केवल अपने स्वार्थों और ऐन्द्रिक तुष्टि पूर्ति में सुख व संतोष खोजने का प्रयास कर रहा है ।

राजनेता, प्रशासकीय तंत्र, उद्योगपतियों के बीच भ्रष्टाचार और ष्वेत वसन अपराध एक दूसरे के पूरक बन गये हैं । सत्ता

* सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र शासकीय महाविद्यालय अमरपाटन, सतना
** शोध छात्र, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र)

शक्ति, पदीय शक्ति और अर्थ शक्ति सम्पूर्ण समाज का प्रायोगिक शोषण कर अपनी झोली भर रहे हैं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के समग्र सांस्कृतिक मूल्य इन्हीं शक्तियों से संचालित, परिभाषित एवं नियंत्रित किये जाते हैं। सरकारी तंत्र, नवजीवन प्रदान करने वाला चिकित्सा क्षेत्र एवं चिकित्सक, नागरिक सुरक्षा, कानून और व्यवस्था की देखरेख करने वाला पुलिस तंत्र, देश तथा समाज के कर्णधारों को गढने वाला शिक्षा तंत्र कर्तव्यहीनता, पदीय अधिकारों का अनुचित दोहन एवं आर्थिक शोषण कर भ्रष्टाचार को बढावा दे रहे हैं ।

लौकिक सत्ता से परे पारलौकिक सत्ता तक पहुंचाने में मददगार धार्मिक संस्थाओं के स्वयंप्रभु पंडा, पुजारी, तांत्रिक आदि लोगों की भावनाओं एवं अज्ञानता के साथ खिलवाड कर रकम ऐंठने की जुगत बनाये हैं । लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कही जाने वाली पत्रकारिता, इलेक्ट्रानिक मीडिया, सिनेमा, कम्प्यूटर और संचारनेट भी अपने प्रभाव से भ्रष्टाचार बढाने, आपराधिक प्रवृत्ति की ओर ढकेलने, दैहिक प्रदर्शन कर यौन हिंसा और मानसिक अस्थिरता को बढावा दे रहे हैं । मातृभूमि की रक्षा के लिए तैनात सैनिक तंत्र में घोटाले, रक्षा सौदे में दलाली व दुश्मनों को बेहद संवेदनशील जानकारी उपलब्ध कराना समाज के स्पंदन में कुठाराघात है तथा हमारे राष्ट्रीय चरित्र एवं आचरण व्यवहार को दर्शाते हैं । भ्रष्टाचार के दलदल में धॅसती जा रही भारतीय समाज का चारित्रिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक पतन का उदाहरण है। दैनिक जीवन मे काम आने वाली वस्तुओं की कालाबाजारी, मिलावट, कम तौल, नकली उत्पाद आदि निचले स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार की कहानी बयां करते हैं। कार्यालयों में अराजकता, लेटलतीफी, कर्तव्यहीनता, आमजन के प्रति संवेदनहीनता, लापरवाही व उपेक्षापूर्ण व्यवहार आज आम चलन बन गया है। कार्य के बदले नजराना कमीशन, घूंस, स्पीडमनी, डोनेशन, उपहार, पार्टी देना आदि रूप में भ्रष्टाचार आज स्वीकृत आचार–संहिता के अंग बन रहे हैं ।

बिदुर नीति में कहा गया है –''***हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम् ।/ सुहृदश्च परित्यागस्यो दोषः क्षयावहाः ।।***'' अर्थात् दूसरे के धन का हरण करना, पराई स्त्री का संसर्ग तथा सुहृदय मित्र का परित्याग ये तीनों ही दोष समाज एवं राष्ट्र का नाष करने वाले हैं ।वर्तमान परिवेष में हमारे समाज में उक्त तीनों दोष समाहित हैं, यदि समाज व राष्ट्र का कल्याण तथा उत्थान करना है तो हमें इन विकारों से दूर हटने का प्रयास करना होगा। उपरोक्त तथ्य के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय समाज के लोक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण विकास प्रक्रिया बाधित हुई है । वैयक्तिक व सामाजिक विघटन हो रहा है । समाज में भेदभाव, ईर्ष्या, शंका, भाई–भतीजावाद, हिंसा, गुटीय संघर्ष तथा यौन शोषण में वृद्धि आदि से सम्पूर्ण सामाजिक संरचना प्रभावित हो रही है।

लोक जीवन में भष्टाचार को दूर करने हेतु सुझावः– यद्यपि लोक जीवन में गहराई तक समाहित भ्रष्टाचार रूपी सामाजिक बुराई से रातोरात नहीं निपटा जा सकता तथापि सार्थक प्रयास व पहल से इस गंभीर चुनौती से मुकाबला किया जा सकता है। वे प्रयास निम्न हैं–1. व्यक्ति स्तर पर कार्य संस्कृति व दायित्व बोध की भावना को आंतरिक स्वीकृति मिले इसके लिये संस्कारों पर विशेष ध्यान देना होगा । 2. महिलायें अपने संतानों को पालन–पोषण अनैतिक कमाई से करने का निष्चय करें तो पारिवारिक स्तर पर भ्रष्टाचार हतोत्साहित होगा। 3. भ्रष्टाचार में संलिप्त व्यक्ति का वाह्य समर्थन न करके उसका सामाजिक बहिष्कार किया जाय। 4. आवष्यकताओं को सीमित करने का पहल सभी स्तर पर की जानी चाहिए । 5. निचले स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार की नैतिक साहस व बल के द्वारा रोकने के लिये मूल्योन्मुख शिक्षा व जन जागरूकता बढाने का प्रयास हो । 6. सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों एवं सांस्थानिक साधनों के बीच सामंजस्य स्थापित किया जाये और इनकी अनदेखी करने वालों को कठोर दंड दिया जाय । 7.गोपनीयता की आड में होने वाले कारनामों को सूचना अधिकार के दायरे में लाया जाय ।

निष्कर्ष :– भारतीय समाज में भ्रष्टाचार सामाजिक व्याधि की तरह छाया है हमारे समाज में भ्रष्टाचार एक फैशन बन गया है। कंचन एवं कामिनी की चमक–दमक एवं खनक हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा तथा प्रभाव के पर्याय बन गये हैं । भारतीय समाज में सदियों से स्वीकृत सामाजिक मूल्य, सांस्कृतिक विरासत व संतोषं परमं सुखं जैसे आदर्श सुखवादी, विलासितापूर्ण जीवन व उपभोक्तावादी संस्कृति के सामने प्रभावहीन होते जा रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी समृद्ध विरासत तथा अतीत के गौरव गाथाओं का अनुकरण अपने चरित्र निर्माण में करना प्रारंभ कर ''परहित सरिस धर्म नहीं भाई'' की भावना से प्रेरित हो कर्तव्य पथ पर बढें ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Robert K. Merton, "Sociel Strcture and Anomie : Harper & Brothers, New York. 2. Robert R. Bell, " Social Deviance : A Substantive analysis, The Dorsey Press, Homewood lllions. 3. Dr. P.B. Sengupta, Corruction, Casual Model and Path analysis, 1982 Kabita Publisher Jabalpur. 4. रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, उच्चतर समाजषास्त्रीय सिद्धांत, 2001 विवेक प्रकाशन नई दिल्ली । 5. हनुमान प्रसाद पोद्दार, बिदुर नीति, गीता प्रेस गोरखपुर । 6. मस्तराम कपूर, समसामयिक प्रतिक्रियायें, लेखक मंच नई दिल्ली । 7. डी.एस. बघेल, अपराधशास्त्र, विवेक प्रकाशन नई दिल्ली । 8. पाटिल एवं भदौरिया, भारतीय समाज, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ भोपाल ।